



शिक्षा का उद्देश्य

शहरी वंचित समुदायों के सन्दर्भ में

शिवानी तनेजा

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के मुताबिक, शिक्षा के व्यापक लक्ष्य हैं - बच्चों के भीतर विचार और कर्म की स्वतंत्रता विकसित करना, दूसरों के कल्याण और उनकी भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता पैदा करना...आदि आदि। अब तक अपने ही उपायों द्वारा जी रहे मज़दूर वर्ग, आदिवासी, दलित और समाज के हाशिए पर रहने वाले अन्य समूहों के लिए इस शिक्षा के मायने क्या हैं? 'शिक्षा' से मज़दूर वर्ग को आखिर हासिल क्या होता है? वास्तव में शिक्षा पर होने वाले विमर्श को इनकी

वास्तविकताओं के सन्दर्भ में रखकर देखा जाए। इस विषय पर ‘मुस्कान’ संस्था ने भोपाल की कुछ बस्तियों में एक महत्वपूर्ण शोध कार्य किया है जिसे हम आपके साथ साझा कर रहे हैं इस लेख में।

शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने की सोच, और यह विचार, कि सभी बच्चों को स्कूल जाना चाहिए, शिक्षा और विकास के क्षेत्र में काम कर रहे हम में से अधिकांश लोगों के दिलो-दिमाग पर छाया हुआ है। दुनिया के प्रगतिवादी विचारों ने बच्चों के अधिकारों के दृष्टिकोण से स्कूली शिक्षा को अनिवार्य बना दिया है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के मुताबिक, शिक्षा के व्यापक लक्ष्य हैं, बच्चों के भीतर विचार और कर्म की स्वतंत्रता विकसित करना, दूसरों के कल्याण और उनकी भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता पैदा करना, और बच्चों को नई परिस्थितियों के प्रति लचीले और मौलिक ढंग से पेश आने में मदद करना। शिक्षा ऐसी होना चाहिए जिससे उनके भीतर लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में भाग लेने की, और मौलिक अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति, तथा सौन्दर्यबोध की समझ विकसित हो, और साथ ही आर्थिक प्रक्रियाओं व सामाजिक बदलाव की ओर कार्य करने व उसमें योगदान देने की क्षमता भी विकसित हो सके।

उन समूहों के, जो अब तक अपने ही उपायों द्वारा जी रहे थे (मजदूर वर्ग, आदिवासी, दलित, और समाज के हाशिए पर रहने वाले अन्य समूह),

औपचारिक शिक्षा के दायरे में आने के साथ ही यह महत्वपूर्ण हो गया है कि शिक्षा पर होने वाले विमर्श को उनकी वास्तविकताओं के सन्दर्भ में रखकर देखा जाए। एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि ‘शिक्षा’ से मजदूर वर्ग को हकीकत में क्या हासिल होता है।

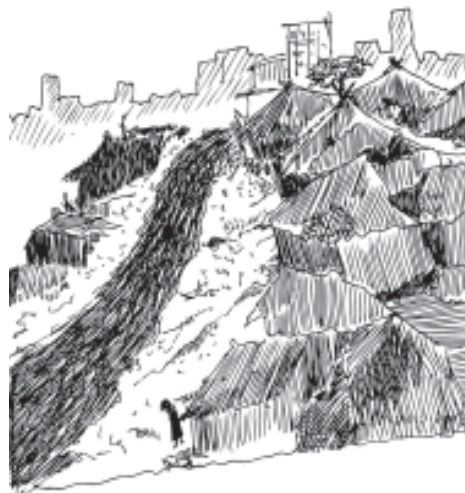
शिक्षा से नदारद आवाज़ें

मजदूर वर्ग के जीवन में औपचारिक स्कूली शिक्षा की क्या भूमिका है, इसकी पड़ताल के लिए भारत और अन्य जगहों पर होने वाले शिक्षा-अध्ययनों में पालकों और बच्चों की आवाज़ें शामिल न होने से एक कमी रह जाती है। स्कूलों के बाहर बच्चों की ज़िन्दगियाँ, उनके माता-पिता और समुदाय, इन सभी को, बच्चों की सीखने की, और स्कूल में उनके बने रहने की कमज़ोर स्थितियों के लिए ज़िम्मेदार प्रमुख कारणों के रूप में काफी चर्चा की जा चुकी है। बीट्रिस एवैलॉस ने 1987 में लैटिन अमेरीका के चार देशों में किए गए मानव जाति विज्ञान सम्बन्धी एक अध्ययन में समुदाय-शिक्षक-विद्यार्थी के सम्बन्धों की संक्षिप्त चर्चा की थी। भारत में, अध्ययनों में बच्चों के दाखिलों, उनके स्कूल में बने रहने से जुड़ी समस्याओं, स्कूल के आधारभूत ढाँचों,

शिक्षा के स्तरों और कभी-कभी कक्षा की प्रक्रियाओं को शामिल किया गया है, पर इन अध्ययनों में विरले ही विद्यार्थियों के जीवन के मुद्दे और उनके समुदाय के मुद्दों को जगह मिली है। विकास के प्रयासों ने भी मोटे तौर पर समुदाय और शिक्षा के पारस्परिक सम्पर्क-क्षेत्र को सीमित कर दिया है।

इस लेख में हम मुख्य रूप से शहरी मज़दूर समुदायों की नज़र से शिक्षा के असली उद्देश्य की खोज कर रहे हैं। हम मुख्यतः, भोपाल की झुग्गियों में किए गए एक शोध अध्ययन के नतीजों की चर्चा करते हुए यह कर रहे हैं, ताकि कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर दे सकें, जैसे: शहरी गरीब क्या मानते हैं कि शिक्षा से उनके बच्चों को क्या मिलेगा? उन लोगों के लिए 'शिक्षित' होने का क्या मतलब है अर्थात् जिन्होंने खुद कभी स्कूली तालीम को अनुभव नहीं किया लेकिन जिनके बच्चे अब उस स्कूली व्यवस्था में शामिल हो रहे हैं। हम हाशिए पर जीवन जीने वाले समुदायों के बच्चों के लिए स्कूली शिक्षा के मायनों को समझने के लिए शहरी गरीब पृष्ठभूमियों के बच्चों के स्कूली अनुभवों के सीधे अवलोकन (इन बच्चों के साथ काम करके हासिल किए गए) पर भी निर्भर करते हैं।

उपर्युक्त अध्ययन में भोपाल की 18 बस्तियों के कुल 228 वयस्कों और 154 बच्चों के साक्षात्कार लिए गए। इन बस्तियों को शहरी गरीबी की



महत्वपूर्ण विशेषताओं (बस्ती के स्थान, नाप, भूमि अधिकारों, सामाजिक समूहों, धर्म, पेशों और आपदा-पीड़ित होने) के आधार पर चुना गया, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा वास्तविकताओं और दृष्टिकोणों को अध्ययन में शामिल किया जा सके।

शिक्षा - वयस्कों का दृष्टिकोण

उत्तरदाताओं की शैक्षणिक पृष्ठभूमि इस प्रकार की थी - साक्षात्कार में शामिल हुई 145 महिलाओं में से 65%, और 83 पुरुषों में से 46% के पास स्कूली शिक्षा का कोई अनुभव नहीं था; 18% महिलाओं और 23% पुरुषों ने पाँचवीं कक्षा से कम तक की शिक्षा प्राप्त की थी। खुद इतनी कम स्कूली शिक्षा हासिल करने के बाद भी, लगभग ये सभी माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल भेज रहे थे।

यहाँ पर हम इन वयस्कों द्वारा इस तरह के सीधे सवालों पर दिए गए उत्तरों को प्रस्तुत कर रहे हैं, जैसे – वे अपने बच्चों को शिक्षा क्यों दे रहे थे, उन्हें क्या लगता था कि 'शिक्षा' से उनके बच्चों को ज़िन्दगी में क्या हासिल होगा? उनकी बातों को और समझने के लिए हमने ऐसे प्रश्न भी पूछे, जैसे उनके हिसाब से कोई व्यक्ति पढ़कर क्या हासिल करेगा?

हमने पाया कि इन पालकों ने शिक्षा को विभिन्न मूल्यों से जोड़ा था। हमने उनके उत्तरों को निम्नानुसार श्रेणीबद्ध किया है, और प्रत्येक श्रेणी के उदाहरण सामने रखे हैं।

साक्षरता के लिए शिक्षा

पालक प्रायः स्कूल को ऐसी जगह के रूप में देखते थे जहाँ बच्चे पढ़ना सीख जाएंगे। साक्षर वातावरण से घिरे हुए शहर में रहते हुए कई लोगों ने ऐसे अनुभवों को याद किया जब उन्होंने साक्षर न होने की वजह से खुद को असमर्थ महसूस किया था।

- बैंक का खाता खोलने में मदद हो जाती है। पहले साइन करना सीखो, तब जाकर खाता खुलता है। (पुरुष, विश्वकर्मा नगर बस्ती)
- कोई कागज़ पड़ा हो तो अभी पड़ा रहता है। कुछ पढ़ना आता तो उठाकर पढ़ लेते। (स्त्री, मांझी बस्ती)
- कोर्ट में काम आता है। उधारी लिखने में काम आता है। (पुरुष, ढोलक बस्ती)



पढ़ना आने की ज़रूरत को लिखना आने की ज़रूरत की तुलना में ज्यादा ज़ोरदार ढंग से सामने रखा गया। लिखना उन्हें अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगियों में किसी फोन नम्बर को लिखने के लिए या फिर किसी उधार की रकम को लिखने के लिए ज़रूरी लगता है ताकि वे हिसाब रख सकें कि उनके ऊपर कितना उधार है।

ऐसे कई लोग थे जिन्हें यह लगता था कि शिक्षा, खास तौर पर बुनियादी संख्या ज्ञान से उन्हें उनके काम में मदद मिलती।

- सिलाई का काम करती हूँ; किताब में नाप नहीं लिख पाती क्योंकि पढ़ी-लिखी नहीं हूँ। बड़ी दिक्कत होती है। (स्त्री, वाजपेयी नगर)
- कबाड़ी का काम करते हैं, हम भी हिसाब तो कर सकते हैं लेकिन कभी ज़रूरत पड़ती है। (पुरुष, अन्नू नगर)
- अगर पढ़ता-लिखता होता, तो

अच्छी तरह से बात करके जड़ी-बूटी बेच सकता। क्योंकि जो बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे होते हैं, वो हमारी बातों को समझ नहीं पाते। (पुरुष, गोंड बस्ती)

ये ऐसे बड़े भारी फायदे नहीं हैं जो लोग 'शिक्षा' के माध्यम से पाने की आशा रखते हैं। एक से कौशल होने के बाद भी अपने कामों में उनकी प्रगति, साक्षरता और संख्या ज्ञान के न होने की वजह से बाधित हो गई है, और वे इन बाधाओं को पार करने की आशा रखते हैं। लोगों ने व्यावहारिक दृष्टि से भी शिक्षा के महत्व को समझा है।

साक्षरों की मदद से छुटकारा

किसी और से चीजों को पढ़कर सुनाने के लिए कहना इनमें से कई लोगों के लिए अपमानजनक अनुभव रहा है। 'निरक्षर' और 'साक्षर' व्यक्ति के बीच घटने वाला ऐसा प्रसंग, जहाँ निरक्षर व्यक्ति की मदद के लिए साक्षर व्यक्ति ने उसे कोई चीज़ पढ़कर सुनाई हो, गैरबराबरी से भरा है। जिन लोगों के साक्षात्कार लिए गए, उनके अनुभवों में साक्षर लोगों ने साक्षर होने की योग्यता का इस्तेमाल वंचित व साधनहीन लोगों को नीचा दिखाने के लिए, और उनके बीच होने वाली चर्चाओं में अपना पक्ष मज़बूत करने के लिए किया, और उन्हें यह जताया कि निरक्षर लोग, साक्षर लोगों से 'कमतर' होते हैं।

• (पढ़े-लिखे होते तो) किसी की

शैक्षणिक संदर्भ अंक-34 (मूल अंक 91)

खुशामद नहीं करनी पड़ती; अभी कुछ पढ़ने-लिखने का होता है तो दूसरे का मुँह देखना पड़ता है, कौन मदद कर देगा? (स्त्री, अर्जुन नगर)

- बस में जाते समय शर्म भी महसूस होती है – पूछना पड़ता है कौन-सी नम्बर की बस है। (स्त्री, गेंहूखेड़ा)
- अनपढ़ जान के कहीं भी अँगूठा लगवा लेते हैं। बताते भी नहीं हैं कि क्या लिखा है। सब के हाथ-पैर जोड़ने पड़ते हैं। जब अँगूठा लगाना पड़ता है, तब पढ़ने की बहुत याद आती है। (पुरुष, इन्दिरा नगर)

अपने बच्चों को शिक्षा दिलवाकर, माता-पिता उन्हें इस तरह की फटकारों से बचाना चाहते हैं जो खुद उन्हें साक्षर लोगों पर निर्भर रहने के कारण उनके हाथों झेलना पड़ती है।

भय को मिटाने के लिए शिक्षा

कई उत्तरों से ऐसा लगा कि लोग मानते हैं कि औपचारिक शिक्षा ग्रहण कर पाए तो उनके बच्चे किसी 'शिक्षित' व्यक्ति के सामने कोई झिझक महसूस नहीं करेंगे।

- पढ़-लिख जाएँगे तो चार आदमी के बीच बातचीत कर सकते हैं। अपनी बात रख सकते हैं। अनपढ़ होने पर थोड़ा संकोच होता है। (स्त्री, जाटखेड़ी)
- सबसे ज़रूरी बात है कि (पढ़ने-लिखने से) डर कम हो जाता है। किसी दूसरे का सुनना नहीं पड़ेगा,

हमारे जैसे किसी भी बात का डर नहीं लगेगा। (स्त्री, इन्दिरा नगर)

- डर खत्म हो जाएगा। फिर कई काम आसान हो जाएँगे। हम काम करते हैं फिर भी जैसे माँगने में डरते हैं। ऑफिस में बड़ी हिम्मत करके ही अन्दर जाते हैं। (पुरुष, गौतम नगर)



समाज में, व्यक्ति की उम्र या जीवन-अनुभव कुछ भी हों, औपचारिक रूप से स्कूली शिक्षा प्राप्त किया हुआ कोई व्यक्ति गरीब लोगों के साथ बातचीत करते समय आत्मविश्वास से भरा होता है। ज़मीनी अनुभव बताते हैं कि बड़े स्कूलों के कई किशोरवय बच्चे अपने से कहीं बड़े उन प्रौढ़ लोगों को, जो कई सालों से सड़कों पर जीवन यापन कर रहे होते हैं, इस बारे में सलाह देने में कोई दिक्कत महसूस नहीं करते कि वे अपने जीवन को कैसे बेहतर बना सकते हैं। एक अन्यथा संकोची मध्यमवर्गीय व्यक्ति भी किसी वंचित तबके के व्यक्ति के साथ अपनी (सीमित) मुलाकातों में अपने आप को सामर्थ्य और ताकतवर प्रदर्शित करता है। यह आत्मविश्वास विभिन्न रूप में सामने आता है जिस तरह से वह 'निचले' सामाजिक-आर्थिक क्रम के व्यक्ति से बात करता है या कोई भी सरोकार नहीं रखने का फैसला करता है। लेकिन उसके इस 'आत्मविश्वास' का सामने वाले व्यक्ति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

शहरों में झुग्गियों में रहने वाला मज़दूर वर्ग उन्हीं वर्गों (दलित, आदिवासी और मुस्लिम) से बना है जिन्हें भारतीय समाज में पीढ़ियों से हाशिए पर रखा गया है। आज की दुनिया में जातीय/वर्गीय/धार्मिक आधारित भेदभाव को क्षमताओं और योग्यताओं की परतों में छुपाकर प्रस्तुत किया जाता है। इसलिए यह देखा गया है कि गरिमा की आकांक्षा रखने वाले वंचित तबके के लोग भी यह मान रहे हैं कि 'ऊँचे' वर्गों के श्रेष्ठता वाले रवैये को चुनौती तभी दी जा सकती है जब वे खुद स्कूली शिक्षा से जुड़ी क्षमताएँ हासिल कर लें। एक स्तर पर यह विचार समता की अभिलाषा दर्शाता है और उसमें भरोसा भी।

तौर-तरीकों, व्यवहार में बदलाव

अध्ययन में पाया कि स्कूल को ऐसी जगह के रूप में देखा गया है जहाँ बच्चे कुलीन वर्ग की तरह व्यवहार

करना सीखेंगे। कई को यह भी लगा कि 'औपचारिक शिक्षा' से उनकी संस्कृति और तौर-तरीकों में बदलाव आएगा।

- उठने-बैठने का तरीका अलग हो जाता है। काम करने में फरक आता है। (स्त्री, भदभदा)
- पढ़ना सीख जाँ तो बात ठीक से कर पाएँगे; वो लोग अलग तरह से सोचते हैं। (स्त्री, बालाजी नगर)
- सुन्दर दिखते हैं – सब पढ़े-लिखे लोग। (स्त्री, गेंहूखेड़ा)
- लड़ाई झगड़ा कम करते हैं। (स्त्री, गेंहूखेड़ा)
- स्कूल जाते हैं तो उनके तौर-तरीके सीख जाते हैं। (स्त्री, अहमदपुर बस्ती)

किसी शहरी इलाके में, मज़दूर वर्ग के लोगों के सम्भ्रान्त वर्ग के लोगों के साथ निरन्तर सम्पर्क में आने से कई बार ऐसे अनुभव हुए हैं जब उनके तौर-तरीकों के लिए उनका मज़ाक बनाया गया है। कॉर्पोरेट प्रचार, टीवी, प्रेस और पूरी मीडिया में सुन्दर, सम्पन्न, 'सभ्य' लोगों की छवियों की बाढ़ है, जो लोगों के जीवन में घर कर गई हैं। 'सम्पन्न और सफल मध्यमवर्ग' का तिरस्कार झेलते हुए लोगों के मन में खुद के लिए निरर्थकता और आत्मनिन्दा का भाव पैदा हो गया; और उनके साथ हो रहे बर्ताव को स्वीकार कर लिया है और वे इस भेदभाव पर सवाल खड़े करने की बजाय खुद को ही

इसके लिए दोषी मानने लगे हैं। 'आलोचनात्मक चेतना' के अभाव में मज़दूर वर्ग ने भी इस धारणा को स्वीकार कर लिया है कि मध्यमवर्ग की संस्कृति को अपनाने से उन्हें समाज में स्वीकृति मिल जाएगी और स्कूल यानी औपचारिक शिक्षा को ऐसे उपकरण के रूप में देखा गया है जो लोगों के अन्दर एक सांस्कृतिक बदलाव लाएगा और उनके बच्चों को उनकी खुद की मूल संस्कृति से दूर ले जाएगा।

चयन और नियंत्रण के लिए

इन साक्षात्कारों ने यह दिखाया कि बस्तियों में रहने वाले लोग व्यापक रूप से यह सोचते हैं कि शिक्षा से वे अपनी जीवन-परिस्थितियों पर, कुछ हद तक, नियंत्रण कर पाएँगे। कई साक्षात्कारों में पालकों द्वारा शिक्षित होने की वजह से कोई नौकरी मिल जाने या काम को चुन पाने की सम्भावना का जिक्र किया गया। उनको लगा कि शिक्षा से उन्हें नीरस और कठोर शारीरिक श्रम करने से तथा दूसरों के सामने विवश होने से (बार-बार, हर रोज़ अपमान का घूँट पीना) छुटकारा मिल सकेगा। इससे कुछ आर्थिक लाभ भी प्राप्त होंगे जिनसे वे अपना जीवन स्तर बेहतर बना सकेंगे।

- अगर पढ़े-लिखे होते, तो काम जल्दी बदल जाता है। (पुरुष, विश्वकर्मा नगर)
- मैं नहीं चाहता कि जैसे हम घूम रहे हैं, वैसे वो भी घुमे, दूसरे के

घरों में काम करना अच्छा नहीं लगता लेकिन मजबूरी है। (स्त्री, गोंड बस्ती)

- अनपढ़ इन्सान मज़दूरी के सिवाय कुछ और नहीं कर सकता।
- पैसे की बात नहीं है, शरीर टूट जाता है। जब तक हाथ-पाँव चल रहे हैं, तब तक ठीक है। काम से लौट रहे इन्सान से उसकी हालत पूछो। (पुरुष, गाँधी नगर)
- दूसरों के लिए काम कर रहे हो तो दो बातें भी सुननी पड़ती हैं; पढ़े-लिखे होते तो सुनना नहीं पड़ता। (पुरुष, वाजपेयी बस्ती)
- (बच्चों को) धूप में नहीं घूमना पड़ेगा, जैसे इनके अब्बू घूमते हैं। (स्त्री, ब्लूमन कॉलोनी)
- हमें बिना गलती के ही चार बातें सुना देंगे, पर बड़े लोगों से गलती पर भी बोल नहीं सकते। (स्त्री, गेंहूखेड़ा)
- हम तो अपने बच्चों को अच्छे स्कूल में नहीं पढ़ा सकते और ना उनकी सारी ज़रूरतें पूरी कर सकते हैं, पर वे पढ़ जाएँगे तो अपने बच्चों की ज़रूरतें तो पूरी कर पाएँगे। (स्त्री, अर्जुन नगर)
- हमारी तरह झोपड़ी में नहीं रहेंगे; कभी भी घर टूट जाए। (स्त्री, जाटखेड़ी)
- पढ़ाई से जीवन में खुद को लगेगा कि हाँ, मैं हर निर्णय ले सकती हूँ। (स्त्री, वाजपेयी बस्ती)



फोटोग्राफ: शिवानी तनेजा

- मोटे तौर पर, शिक्षा को ऐसी चीज़ के रूप में देखा गया जो वर्तमान ज़िन्दगियों में कुछ बदलाव लाने में सक्षम है।
- ज़िन्दगी बदल जाएगी (अगर पढ़-लिख जाएँगे)। (स्त्री, जाटखेड़ी)
- वो (पढ़े-लिखे लोग) गाड़ी से चलते हैं; हम पैदल चलते हैं। (पुरुष, विश्वकर्मा नगर)
- पढ़ा-लिखा इन्सान ज़माने के हिसाब से पहले तैयार हो जाता है। (स्त्री, कृष्णा नगर)
- आजकल पढ़े-लिखे लोगों का ही ज़माना है। (पुरुष, सेवनिया गोंड)

विविध दृष्टिकोणों की पड़ताल

शिक्षा उनके बच्चों के लिए क्या

कर सकती है (या क्या करेगी), इस बात को लेकर लोगों की मान्यताएँ, मध्यम वर्ग और राज्य के साथ उनके और उनके समुदाय के पारस्परिक सम्पर्क से निकलती प्रतीत होती हैं। अतिअल्प संसाधन, दूसरों की फटकार और निरादर के अनवरत अनुभवों तथा ज़मीन व भोजन की असुरक्षा के साथ रोज़मर्रा की ज़िन्दगी गुज़ारते हुए हाशियाकृत समुदायों के लोगों का स्वाभिमान रोज़ क्षीण होता चला है। अपनी मूल जगहों और पारम्परिक जीवन को छोड़कर शहरों में आकर झुग्गी बस्तियों में रहना, इस विस्थापन ने सम्भवतः लोगों के अन्दर अपनी पहचान और सामाजिक जुड़ाव के एहसास को और कमज़ोर कर दिया है। सामाजिक बहिष्कार जो लोगों के स्वाभिमान पर चोट करता है गरीबी का एक महत्वपूर्ण पहलू माना गया है।

इस अध्ययन में पालकों के स्कूल के अनुभवों को भी शामिल किया गया है। दस में से नौ लोगों ने कहा कि वे नियमित रूप से अपने बच्चे के स्कूल जाते थे, या तो उसे छोड़ने के लिए या फिर किसी दूसरे कारण से जैसे स्कूल की फीस भरने या फिर स्कूल वालों को यह बताने के लिए कि उनका बच्चा क्यों कुछ दिन से स्कूल नहीं आ रहा था। तीन में से दो पालकों ने बताया कि वे स्कूल इसलिए गए क्योंकि स्कूल वालों ने उन्हें बुलाया था। कक्षा में मस्ती करने, खेलने या बातें करने, या फिर ठीक से पढ़ाई नहीं करने

जैसी बच्चों की कुछ शिकायतें पालकों को स्कूल में बुलाने का प्रमुख कारण थीं। साक्षात्कारों से स्पष्ट निकला कि पालकों को यही लगा कि वे स्कूल शिक्षकों से कुछ सुनने गए थे, न कि अपनी बात उनसे कहने। पूरे सर्वेक्षण में यही बात उभर कर आई कि चाहे शिक्षकों के साथ कोई सामूहिक बैठक हो, या कोई एक शिक्षक और एक पालक के बीच की बातचीत, पालकों की तुलना में शिक्षक ही ज़्यादा बोलते थे।

राज्य और मध्यमवर्ग की कार्य-पद्धतियों ने इस प्रकार यह सुनिश्चित कर दिया है कि लोग अपना मूल स्वभाव, अपने मिजाज़, अपनी हिम्मत खो देते हैं। इस हकीकत को न सिर्फ शिक्षा व्यवस्था, बल्कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली, स्वास्थ्य व्यवस्थाओं, संचार माध्यमों के माध्यम से सम्प्रेषित की जाने वाली जानकारी और दृष्टिकोण में देखा जा सकता है, और साथ ही वंचित तथा सत्ताधारी तबके के बीच होने वाले सभी तरह के पारस्परिक सम्पर्कों के मुद्दों और आपसी रवैये में भी देखा जा सकता है। एक बांग्लादेशी अध्ययन में पाया गया कि झुग्गियों में रहने वाले अधिकांश लोगों का कहना था कि सम्पन्न लोग उन्हें मनुष्य तक नहीं मानते।

साधना सक्सेना ने अपने अध्ययन, साक्षरता में सामुदायिक भागीदारी, 2003 में सम्पूर्ण साक्षरता अभियान में जन आन्दोलन के चरित्र का विश्लेषण किया है। वे राष्ट्रीय साक्षरता मिशन

के पहले महानिदेशक के वक्तव्य का हवाला देती हैं, 'ऐसे कार्यक्रम विद्यार्थियों को अपनी दुर्दशा और दुर्गति को देख पाने और उसे आत्मसात करने, उस दुर्दशा को अक्षर ज्ञान और संख्या ज्ञान न होने से जोड़कर देखने, और साक्षरता के माध्यम से मुक्ति के साधनों को खोज पाने में मदद करते हैं।' इस साक्षरता कार्यक्रम ने अपनी सीमाओं के भीतर इस बुनियादी विश्वास के साथ काम किया कि निरक्षरता ही लोगों की जीवन-परिस्थितियों के लिए ज़िम्मेदार होती है, और इसमें अत्याचार से भरे सामाजिक, राजनैतिक और पितृ-सत्तात्मक ढाँचों पर कोई सवाल नहीं खड़े किए।

सत्ताधारी वर्ग के अपने आप को सुरक्षित बनाए रखने के प्रयास सफल रहे हैं। उन्होंने इस बात को सुनिश्चित कर दिया है कि वंचित समुदाय के लोग खुद भी अपनी निरक्षरता, बात करने के तरीकों, अपनी संस्कृति, बच्चों की संख्या, जीने के तौर-तरीकों को अपने अभावों और गरीबी के लिए ज़िम्मेदार मानें।

पालकों और समुदायों ने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि प्रभावशाली वर्गों की नकल करके ही स्थिति में सुधार आ सकता है। शासक वर्ग 'की तरह' बनना ही व्यक्ति की आकांक्षा हो गई है। यहाँ पर एक समस्या है -



- जहाँ यह स्वीकार किए जाने की किसी व्यक्ति की भावनात्मक ज़रूरत को तो पूरा करती है, वहीं यह जनशक्ति और आलोचनात्मक चेतना के खिलाफ जाती है। यह बाज़ार में योग्य उपभोक्ता बनने के उद्देश्य को आगे बढ़ाती है। पर यह किसी दूसरे के साथ खड़े होने की गुंजाइश नहीं देती और सामाजिक व आर्थिक असमानताओं पर सवाल खड़े करने के विपरीत जाती है।

शिक्षा से की जाने वाली एक और महत्वपूर्ण अपेक्षा (जो पहले के खण्ड में देखी गई है) है भय को पार करना। यहाँ जिस आत्मविश्वास को पाने की बात हो रही है वह खुद को जानने, अपनी क्षमताओं को जानने और अपनी पहचान पर गर्व करने से जुड़ा हुआ नहीं है। इस मामले में, इसे सत्ताधारी वर्ग द्वारा थोपी गई नकारात्मकता को

जीतने के लिए ज़रूरी निडरता की आकांक्षा के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। यह बात बिलकुल अलग है कि स्कूली शिक्षा पूरी कर लेने के बाद भी, बहुतायत बच्चे अधीन हो जाएँगे, और उन्हें सम्मान के साथ नहीं देखा जाएगा क्योंकि वे उस वर्ग-विशेष के रसूखदार तबके के नहीं हैं।

यह देखा जा सकता है कि शिक्षा से जुड़ी लोगों की अपेक्षाओं में व्यावहारिक साक्षरता के पहलू के अलावा, वंचित समुदायों ने ऐसे मुद्दों को ज़ाहिर किया है जिन्हें शिक्षा की परिधि के बाहर हल करना सम्भव होना चाहिए था। यदि स्कूली शिक्षा हासिल किए लोग वाकई में 'शिक्षित' होते तो वंचित तबकों के प्रति उनका रवैया अनादर और दमन से भरा हुआ न होता। लोगों को मनुष्यों के रूप में सम्मान की निगाह से देखे जाने के लिए स्कूली प्रमाणपत्रों का मुँह नहीं देखना पड़ता। अगर ये समुदाय अपने बच्चों को स्कूलों में भेज रहे हैं, तो उसका प्रमुख कारण यह है कि वे अपने बच्चों को उन कठिनाइयों से गुज़रने से बचाना चाहते हैं जिन्हें वे 'निरक्षरता', 'स्कूल शिक्षा' न हासिल कर पाने और 'गरीबी' की देन मानते हैं। 'शिक्षा' को, अतएव, व्यक्ति में योग्यताएँ पैदा करने वाले उपकरण से ज़्यादा, अपना बचाव करने की व्यवस्था के रूप में माना गया है।

स्कूलों में बच्चों के अनुभव

यहाँ संक्षेप में वास्तविक स्कूली

प्रक्रियाओं और अनुभवों की चर्चा करना उपयोगी होगा ताकि इस बात की पड़ताल की जा सके कि उनसे कौन से सम्भावित उद्देश्य पूरे हो रहे हैं।

शिक्षाविदों के रूप में हम इस बात को बखूबी जानते हैं कि अलग-अलग गरीब परिस्थितियों वाले हज़ारों बच्चों के लिए स्कूलों का अनुभव बहुत सकारात्मक नहीं रहा है। नांबिसन (2000) ने ऐसे अध्ययनों का ज़िक्र किया है जिनमें शिक्षकों द्वारा बच्चों को 'मन्दबुद्धि', 'पिछड़े' और 'असभ्य' कहा गया है। आदिवासी बच्चों के बारे में शारदा बालगोपालन का अध्ययन दिखाता है कि इन बच्चों के साथ खुले तौर पर होने वाला भेदभावपूर्ण व्यवहार किस तरह से शिक्षकों के पूर्वाग्रहों का नतीजा है। इस अध्ययन में शामिल दस में से नौ बच्चे शारीरिक हिंसा का शिकार हुए थे। झुगियों से आने वाले बच्चों के प्रति शिक्षकों की भाषा भी बहुत दमनकारी मालूम हुई। ये भेदभाव बच्चों के, और उनके पालकों के मन में भी रच-बस जाते हैं। बहुत छोटी उम्र से ही बच्चे के अन्दर नाकाबिल होने का और स्कूल में अयोग्य होने का भाव पैदा हो जाता है। पढ़ाई से भी बच्चे का मन हट जाता है और फिर उसका इस बात से यकीन भी खत्म हो जाता है कि 'औपचारिक शिक्षा' उसके लिए है।

अगर स्कूल ऐसे सामाजिक स्थान माने जाते हैं जहाँ बच्चे अन्य पृष्ठभूमियों से आने वाले बच्चों के साथ घुलते-

मिलते हैं, तो यह स्थिति भी शहरी गरीब बच्चों के लिए कहीं दिखाई नहीं देती क्योंकि जातीय और सामाजिक भेद स्कूल की सीमाओं के अन्दर भी मौजूद रहते हैं। इस अध्ययन में शामिल सभी बच्चे शहरी गरीब पृष्ठभूमि से थे, किन्तु सिर्फ 17% बच्चे (लड़कियों की तुलना में लड़के ज्यादा) ऐसे थे जिनके स्कूल में बने मित्र उनकी अपनी बस्ती के बाहर के थे। 'सामाजिक रूप से अधिक असुरक्षित बच्चों' को अक्सर दूसरों द्वारा निशाना बनाया जाता है और उनकी सामुदायिक पहचानों के कारण उन्हें अपमानित होना पड़ता है। ऐसा सरकारी स्कूलों में भी होता है और छोटे निजी स्कूलों में भी। मिशनरी स्कूलों और अन्य बड़े निजी स्कूलों में भी, जो 'गरीब बच्चों' के लिए पृथक खण्ड चलाते हैं, भेदभाव के ऐसे मामलों का उल्लेख किया गया है।

बच्चों के लिए और अधिक पीड़ादायी बात यह थी कि इन दृश्यों को देखने वाले वयस्क लोगों ने उनका बचाव नहीं किया। इसके विपरीत, अधिकांश मौकों पर, जिस बच्चे का मज़ाक बनाया जा रहा होता था, उसके विरुद्ध शिक्षक भी ऐसे ही पूर्वाग्रह रखते थे जिनसे सताने वाले बच्चों को उन्हें सताने का और मौका मिल जाता था।

लड़कियों और लड़कों के बीच बातचीत, दोस्तियों को पहली कक्षा से ही हतोत्साहित किया गया। आधे से ज्यादा बच्चों ने कहा कि उन्होंने

विपरीत लिंग के बच्चे के साथ कभी बात ही नहीं की थी, और हर पाँच में से दो बच्चों ने कहा कि उन्होंने सिर्फ तब बात की जब उन्हें कोई किताब चाहिए थी या किसी स्कूली कार्य की अदला-बदली करना थी। शिक्षकों से यह भी सुनने को मिला कि परीक्षा के दौरान लड़के के बगल में किसी लड़की को बिठाना नकल से बचने का सबसे अच्छा उपाय माना जाता है क्योंकि ऐसी धारणा है कि दोनों में से कोई भी एक-दूसरे की मदद नहीं करेगा।

मैं भी यह मत रखती हूँ कि बच्चे पर एक सकारात्मक सामाजिक-भावनात्मक-व्यक्तिगत प्रभाव के बिना, सिर्फ साक्षरता हासिल करना बच्चों के स्कूल जाने के लिए पर्याप्त कारण नहीं है। इसके अलावा, अध्ययन और ज़मीनी अनुभव लगातार यह दिखाते हैं कि शिक्षा व्यवस्था साक्षरता को ही नहीं सिखा पा रही। आज के समय में जब स्कूल बुनियादी शिक्षा देने में असफल हैं और बच्चों को चीज़ें रटाने का रास्ता अपना लिया है, तो व्यवहारिक साक्षरता (जिसे इन समुदायों में ज़रूरी माना गया है) हासिल करना कई बच्चों के लिए एक चुनौती प्रतीत होती है। इस साक्षात्कार के एक अन्य भाग में, पालकों और बच्चों ने बड़े ज़ोरदार ढंग से अच्छे स्कूल को ऐसे स्थान के रूप में परिभाषित किया है जहाँ यह सुनिश्चित हो कि बच्चे सीखें।

शिक्षा का उपकरणिय दृष्टिकोण कक्षा में होने वाले निरर्थक अभ्यासों



और गतिविधियों को अपनाकर, संवेदी क्षमताओं, जिज्ञासा को कुन्द करके और प्रतिस्पर्धात्मक रवैये को बढ़ावा देकर अपनाया जाता है। हम इस पद्धति के उदाहरण विभिन्न विषयों (गणित, भाषाएँ, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान) के विषय-वस्तु और शिक्षण में, मूल्यांकन व्यवस्थाओं में, तथ्यों और आँकड़ों को रटकर ज्यों-का-त्यों उतार देने की अपेक्षा में, मानव मस्तिष्क की मौलिक सम्भावनाओं को क्षीण करते जाने में देख सकते हैं। पाठ्यपुस्तकें लैंगिक, जातीय और वर्गीय भेदभावों से भरी पड़ी हैं। हाशियाकृत समाजों के बच्चों के लिए गए अनुभवों की कक्षा में कोई जगह नहीं होती, इसकी बजाय बच्चों का ऐसी अंजान विषयवस्तु से वास्ता पड़ता है जिसमें उनकी ज़िन्दगियों को नीची निगाह से देखा जाता है और उन्हें सक्रिय रूप से अपमानित किया जाता है। जब तक वर्तमान शैक्षणिक ढाँचों के अन्दर वंचित तबकों

के विरुद्ध मौजूद वर्गीय पूर्वाग्रहों को चुनौती नहीं दी जाती तब तक पाठ्य-पुस्तकों और आकलन व्यवस्थाओं में बदलाव करने से थोड़ा-बहुत ही असर पड़ेगा।

स्कूलों और झुग्गियों के भीतर हमारे प्रत्यक्ष कार्यों के ज़मीनी अनुभवों ने दर्शाया है कि प्रसन्न और रोमांचित रहने वाले बच्चों को जैसे-जैसे मुख्यधारा में लाया जाता है, वे उत्तरोत्तर दबू होते जाते हैं। उनका लिखना स्वाभाविक भावों की अभिव्यक्ति की बजाय सिर्फ 'स्वीकृत ज्ञान' को लिख देने तक सीमित हो जाता है। स्कूल जाने वाले बच्चों से राष्ट्रीय ध्वज, नुकीले पर्वत या फूलदान में रखे कृत्रिम दिखने वाले फूलों के अलावा कोई और चित्र बनवाने के लिए ढेर सारे प्रोत्साहन और मदद की आवश्यकता होती है।

शिक्षा के एक मुक्तिदायी प्रक्रिया होने के विपरीत, चोम्स्की ने इस बात को बहुत स्पष्ट ढंग से सामने रखा है कि सामूहिक शिक्षा का ढाँचा इस प्रकार तैयार किया गया ताकि स्वतंत्र किसान उत्पादन के आज्ञाकारी, निष्क्रिय उपकरण बन जाएँ। समाज जितना अधिक स्वतंत्र होता जाता है, महापशु (अर्थात् लोग) उतना अधिक खतरनाक होता जाता है, और आपको उसे किसी तरह पिंजड़े में बन्द करने के लिए और अधिक होशियार होना पड़ता है।

अगला मुकाम

शिक्षा का असली मकसद भावना में और क्रियान्वयन में वंचित तबकों से उतना ही दूर है जितना वह स्कूलों से दूर है। क्या हमारी शिक्षा व्यवस्था हमें सामाजिक बदलाव और मौलिकता की तरफ ले जा रही है? क्या राज्य ऐसा करने की प्रेरणा भी रखता है?

साधना सक्सेना ने सामुदायिक भागीदारी पर किए गए अपने अध्ययन में लिखा है, “क्या शक्तिशाली सम्भ्रान्त वर्ग से शक्ति छीने बगैर लोगों का सशक्तिकरण हो सकता है? राज्य और लोगों के बीच एक स्वाभाविक अन्तर्विरोध है। बिना वित्तीय सहायता के, बिना प्रायोजक के, संकटग्रस्त स्थिति में भी चलने वाले महिला आन्दोलन के अस्तित्व से राज्य और

उसकी पुरुष-प्रधान व्यवस्था की हकीकत किसी हद तक उजागर हो जाती है। लेकिन, शिक्षा के सन्दर्भ में, राज्य की शक्तियों के खिलाफ कभी भी कोई सशक्त प्रतिरोधी आवाज़ नहीं उठ पाई है।”

‘स्कूलीकरण’ के सामने ‘शिक्षा’ का अर्थ क्या एक ऐसा उद्देश्य है जिसे टाला जा सकता है? शिक्षा एक अधिक न्यायपूर्ण, निष्पक्ष और मानवीय दुनिया बनाने के लिए कई चीज़ों को बदल तो नहीं सकती लेकिन वह इस प्रयास में सहयोग दे सकती है; या फिर वह वर्गीय भेद को और बढ़ाने का उपकरण बनकर लोगों की अवहेलना और दमन का आधार बन सकती है। क्या नागरिक समाज आवाज़ उठाने के लिए तैयार है?

शिवानी तनेजा: ‘मुस्कान’ संगठन के माध्यम से भोपाल में शिक्षा के क्षेत्र में काम करती हैं।
अंग्रेज़ी से अनुवाद: भरत त्रिपाठी: पत्रकारिता की पढ़ाई। स्वतंत्र लेखन और द्विभाषिक अनुवाद करते हैं। गाज़ियाबाद में निवास।

रेखाचित्र: कनक शशि: स्वतंत्र कलाकार के रूप में पिछले एक दशक से बच्चों की किताबों के लिए चित्रांकन कर रही हैं। एकलव्य के डिज़ाइन समूह से सम्बद्ध। भोपाल में निवास। इस लेख के सभी चित्र ‘मुस्कान’ संस्था द्वारा प्रकाशित विभिन्न प्रकाशनों में से लिए गए हैं। यह लेख ‘शहरी गरीबों के बीच शिक्षा को लेकर अन्तर्दृष्टियाँ - भोपाल का एक शोध अध्ययन, मुस्कान (2013)’ पर आधारित है। सन्दर्भों की पूरी सूची के लिए आप लेखिका से सम्पर्क कर सकते हैं। उनका ई-मेल पता है: muskaan.office@gmail.com
यह रिपोर्ट पिटारा, एकलव्य और मुस्कान संस्था में उपलब्ध है।